# मानव

रचयिता
श्रीमन्नारायण अग्रवाल

हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, बम्बई
१९४०

# मेरी बात

रोटी के सवाल में मानव जीवन के सुख दुख की झलक मिलती है। इसलिये "रोटी का राग" के बाद "मानव" का प्रकाशित होना, मेरी दृष्टि से, स्वाभाविक ही है।

मानव जीवन की जटिल समस्या को हर एक व्यक्ति अपने अपने ढंग से सुलझाने की कोशिश करता है। मेरी धारणा है कि जीवन में सुख-दुख और आशा निराशा की आँख-मिचौनी परस्पर प्रेम और सहानुभूति के बल पर ही खेली जा सकती है। किन्तु क्या मानव-प्रेम भी धोखा दे सकता है? इस प्रश्न का उत्तर श्रद्धा और अनुभूति पर ही निर्भर है। अगर हमें जीवन में प्रेम और समवेदना भी नही मिल सकती, तो फिर शायद मनुष्य को दुख और निराशा से ही प्रेम करना होगा।

कुछ इसी तरह के भावों को 'मानव' मे गूँथा गया है। शायद इन भावो की झकार अन्य हृदयो मे भी सुनाई पड़े।

**जीवन कुटीर,**
**वर्धा**

श्रीमन्नारायण अग्रवाल

# सूची

---

[ १ ]

मानव जीवन मुझको प्यारा !

सुख दुख की तरल तरंगों का
क्रीड़ामय दर्शन न्यारा ।

खोजूं मै आनन्द-पुण्य क्यों,
देवों के शुचि मंदिर में ?
स्वर्ग-शान्ति का वैभव क्यों मैं
देखूं नीले अम्बर में ?

मोक्ष हेतु मैं क्योंकर भटकूं,
त्याग सकल मानव संसार ?
तीर्थों में साधू बनकर क्यों,
ढूंढूं निर्गुण ज्योति अपार ?

पाया है मैंने अनन्त को
शिशु के हास-विलासों में;
देखा है दैवी-प्रताप को
आह भरे निश्वासों में ।

निज कुटुम्ब औ' मित्रों के घर
प्रेम-पूर्ण आनन्द मिला;
मनुज-प्रीति की मंजु लता में,
मेरा जीवन-पुष्प खिला।

[ २ ]

खोजता था ईश को, पर<br>
पा गया मानव-हृदय को !

धर्म कहता है जिसे जग,<br>
ईश की सत्ता बताता;<br>
योग कहता है जिसे जग,<br>
ब्रह्म का गौरव दिखाता !

ढूँढ़ती आनन्द दुनिया,<br>
धर्म की पागल बनी है,<br>
किन्तु दिल से प्रेम करना<br>
कौन जग को है सिखाता ?

भाग कर मानव-जगत से,<br>
अस्त-जीवन चाहता था;<br>
पा गया पर हृदय में ही<br>
प्रेममय जीवन-उदय को,

खोजता था ईश को, पर<br>
पा गया मानव-हृदय को ! !

[ तीन

[ ३ ]

मानवता का धर्म भूल कर
अन्धकार ही अन्धकार है !

ईश्वर-नाम सभी लेते हैं,
गहन-तत्व तो विरले जाने;
धर्म-ओट में हृदय-हीन हो
स्वार्थ साधना दुनिया ठाने !

मज़हब के पीछे कितनों का
खून बहा है निर्दयता से,
दीनों का हक छीन द्विजों ने
ठुकराया है निर्भयता से !

बुद्धि-ज्ञान के बल पर कितना
फैला है अज्ञान जनों में,
पंडित शास्त्र रटा करते हैं,
नहीं प्रेम का भाव मनों में !

धर्म, कर्म, बल, बुद्धि व्यर्थ हैं
अगर न दिल में प्रेम-खान है !
दुखिया दुनिया की पीड़ा में
सुख से रोना दैव-गान है !

किये बिना कम पीर जगत की,
जीवन क्या, बस एक भार है;
मानवता का धर्म भूलकर,
अन्धकार ही अन्धकार है !

[ ४ ]

जीवन का यह अनुपम बाग़ !

अश्रु-हास, आलोक-तिमिर का,
कैसा सुन्दर राग !

फैला है सुरभित पुष्पों का,
सुखद, प्रेममय गान,
पतित पंखड़ी भरती साँसें,
करती जीवन-त्याग !

एक ओर पुलकित पिक गाती,
मत्त भ्रमर गुञ्जार !
ओर दूसरी आकुल क्रन्दन,
करता पीड़ित काग !

जीवन का यह अनुपम बाग़ !

[ ५ ]

प्रेम बिना सब सूना,
साथिन ! प्रेम बिना सब सूना !

प्रेम-सलिल से सींचा जाकर
जीवन का सुख दूना !

राजा, रंक सभी पीते हैं
प्रेम-अमृत की मीठी प्याली;
बिना प्रेम जीवन नीरस बन
मुरझाता या होता खाली !

अविरत प्रेम निभा सकते जो
वही मनुज कहलाते हैं, प्रिय,
दुखलाना दिल को सब जानें,
विरले ही बहलाते हैं, प्रिय ! ।।

[ ६ ]

मिथ्या है कहना पुष्पों का
सर्वनाश होता कुम्हलाकर,
किलक किलक कर एक घड़ी खिल,
मिट जाते मिट्टी मे मिल कर !

जीवन नहीं व्यर्थ का सपना,
बुद्बुद् जैसा अथिर नही है;
ऊषा की लाली सा नश्वर,
विद्युत् जैसा क्षणिक नही है !

मरण नहीं जीवन में, दुनिया !
जीवन तो अविरत प्रवाह है;
मरना कैसा नित प्रवाह में
जिसका अन्त अनन्त थाह है !

[ ७ ]

मनुज को क्यों मनुज खाये ?

प्रेम के बदले मनुज तो
खून का प्यासा बना है;
स्वार्थ में तल्लीन होकर
द्वेष से पूरा सना है !

नाश के साधन जुटा कर,
नाश अपना कर रहा है !
अन्ध होकर, बुद्धि खोकर
पाप घट निज भर रहा है !

तोप के गोले गिरा कर
वीरता के गान गाये !
मनुज को क्यों मनुज खाये ?

एक था वह काल जब निज
वचन पर जन प्राण देते,

अब ज़माना आ गया है,
तोड़ कर प्रण, जान लेते !

प्राण लेने की कला में
अति निपुण जग बन गया है;
किन्तु जीवन की कला का
ज्ञान ही अब गुम गया है !

कौन सी वह शक्ति जिसके
सामने मानव लजाये ?
मनुज को क्यों मनुज खाये !

## [ ८ ]

आओ प्रिय, हम हिल मिल गावें,
जीवन का मधुमय संगीत !

निर्झरिणी की तरल, विकल, कल
कलित, ललित, मृदु झर झर झर में,
जल-निधि की निर्मल, चंचल, नित
लोल लहरियों की 'हरिहर' में !

बिहगों के कल, कल, उच्छृंखल,
'कुहू' 'पीय' शुचितर निनाद में;
मृदु कलियों के खिल पड़ने के
नव-यौवन-मय प्रियोन्माद मे ।

दीनों के तप्त कपोलों पर
आँसू की अविरल धारों मे,
प्रेमी प्रेयसि-चिता जलावे,
ऐसे ही सरित-किनारों में !

[ ग्यारह

आशा और निराशा-क्रीड़ा,
सुख दुख के तांडव-नर्तन में,
उदय-अस्त की आँख-मिचौनी,
अश्रुहास के चिर कीर्तन मे !

इनमें प्रभु का नृत्य निहारें,
आलापें सुन्दर, शुचि-गीत !
आओ प्रिय ! हम हिल मिल गावें
जीवन का नूतन संगीत !

[ ६ ]

उषा-काल के प्रमुदित गान !
शुचि, सुरभित, सुरम्य प्राची में
फैली नीरव तान !

कोकिल की कल कल कूजन में,
मलयानिल के मृदु चुम्बन में,
कोमल कलियो की किलकन में,
गुंजित जीवन प्राण !

यौवन का मद-केलि शान्त कर,
कनक रश्मियों में तुषार भर,
ऊषा की मधुमय हिलोर पर,
छावे क्यों अवसान ?

[ १० ]

संध्या का शान्त अश्रुमय हास !

प्राची की निर्मल लाली पर
सघन कालिमा छाई,
पश्चिम के अवसान तिमिर में
चिर सुख का आभास !

यौवन के पुष्पित उपवन में
अनिल सुवासित बहता;
आच्छादित अब शान्ति जरा की,
पावन, नीरव त्रास !

जीवन की मधुमय वीणा का
है अति मृदु आलाप,
गुंजित किन्तु मृत्यु-तंत्री में,
अनुपम, मृदु उल्लास।

[ ११ ]

दुख के गीत सुनाओ, साथी,
दुख के गीत सुनाओ !

मुरझाई कोमल पंखड़ियाँ,
आहें भरते सुन्दर फूल;
सिसक सिसक रोता भोला शिशु,
दिल दुखलाते दुख के शूल !

रंकों का करुणामय क्रन्दन,
मरण-शान्ति का नीरव राग;
आओ साथी सुनें इन्हें हम,
खेलें दुख का जीवन-फाग !

## [ १२ ]

जय ! जय ! जय ! सेगाँव सन्त !

कहता है संसार 'महात्मा',
गाता है गुणगान तुम्हारा,
किन्तु झुका है माथा मेरा
इसका तो कारण ही न्यारा !

सत्य, अहिंसा के मंदिर में
रहे सदा तुम अटल पुजारी,
दलित, अकिंचन, अबल जनों के
चिर सेवक, अनन्य हितकारी।

निज शरीर को जला जलाकर
आलोकित करते हो जग को,
सुलभ बनाते त्याग-तपस्या
से स्वदेश के दुर्गम मग को !

कारण नहीं किन्तु यह कोई
मेरे तव गुण गाने का,

भेद और ही कुछ है, बापू,
अपना राग सुनाने का !

विमल प्रेम-जल से तुमने नित
मनुज-हृदय को सींचा है;
सन्त, तुम्हारी मानवता ने
ही मुझको तो खींचा है !

रहो महात्मा तुम सब जग के,
जग से कभी न हारूँगा,
मैं तो नित 'बापू' कह कर ही
तुमको सदा पुकारूँगा !

## [ १३ ]

रो रो कर दिल ढंडा कर लूँ !

भूल जगत की सारी विपदा,
शान्ति-सलिल चित भर लूँ !

जब रोऊँ तो जगती जानें,
हँसता है दिल खोल खोल कर;
मेरा क्रन्दन मैं ही जानूँ,
अश्रु न निकलें 'आह' बोलकर।

रोना ही है तो फिर हँस के,
दुखित हृदय में धीरज धर लूँ;
रो रो कर दिल ठण्डा कर लूँ !

भूल जगत की सारी विपदा,
शान्ति सलिल चित भर लूँ !

# [ १४ ]

अविरल, निर्मल, चंचल, प्रतिपल
झर झर झरती सागर लहरीं !

क्या यह है सुखपूर्ण उमंगें,
सागर की उन्मत्त तरंगें ?
या यह है आतप-मय स्वासें,
आहें वारिध-व्यथित-हृदय की ?
अश्रु-हास-मय क्रीड़ा करती,
अविरल, निर्मल, चचल, प्रतिपल
झर झर झरती सागर लहरी !

होंगी हर्षित हृदय तरंगें,
निज प्रेयसि प्रति प्रेम उमंगें,
आह पूर्ण प्रेमी की क्रीड़ा,
आओ देखो सागर तट पर !
जग को प्रेम गान से भरतीं,
अविरल, निर्मल, चंचल, प्रतिपल
झर झर झरती सागर लहरी !

[ १५ ]

अति प्रचंड झंझा-गर्जन में
छिपी हुई है नीरव शान्ति;
दुख की अश्रुभरी आहों में,
मुसकाती है जीवन-क्रान्ति !

अर्ध रात्रि की काली काली
अलकों में ऊषा छिपती है;
इस नश्वर जीवन मे ही प्रिय,
शाश्वत की गरिमा दिखती है !

[ १६ ]

शुचि प्रभात की सुरभित सुषमा
हर्षाती है मेरी काया ;
अन्धकार में किन्तु सूर्य का
वैभव ढलते रोना आया ।

प्यारे शिशु का मोहक हँसना
सुख से मानस को भरता है ;
मृत्यु-गोद में मुरझाया मुख ,
देख देख कर उर फटता है !

इस दिल के दो टूक हुए हैं ;
बिहसूँ एक, एक से रोऊँ ?

[ १७ ]

आँसू की मेरी प्रिय माला !
जीवन को दुख से भर मैंने
इसे गले में डाला !

कष्टों का जल छिड़क छिड़क कर,
करुण निराशा में नित धोकर,
रो-रोकर दुति अति उज्ज्वल कर,
मैंने इसे गले में डाला
आँसू की मेरी प्रिय माला !

रक्त-लसित अपने हाथों से,
जीवन के बिखरे तारों से,
पोकर पापों के काँटों से,
मैंने इसे गले में डाला !
आँसू की मेरी प्रिय माला !

जीवन के दुखमय उपवन में,
शान्ति खोजता बहुत फिरा मैं,
पाकर सुख को भी दुख ही में,

मैंने इसे गले में डाला !
आँसू की मेरी प्रिय माला ।

[ १८ ]

दुख-सागर के निर्जल तट पर,
भाई ! आओ ! गावें गीत !

जीवन के काँटों पर कब तक,
अश्रु बहावें हृदय बेध कर ?
दिन दिन क्यों निज रक्त बहावें,
गिर गिर इस पथरीले तट पर !

करुण व्यथा के कम्पित स्वर में,
क्यों न मिलावें प्रेमिल गीत ?
दुख सागर के निर्गम तट पर
भाई ! आओ गावें गीत !

[ १६ ]

दीपावली की रात्रि के, ऐ
दीपको ! घन-तम मिटाओ !

देश में रजनी निराशा
की घिरी है ओर चारों,
ज्योति आशा की जगा कर,
मार्ग सेवा का बताओ !

भूख, तृष्णा से करोड़ों
देश-वासी मर रहे हैं;
प्रज्वलित हो दीप, उनमें
ज्योति जीवन की जगाओ !

स्नेह-रूपी तेल में सद्-
ज्ञान की बाती डुबो कर,
द्वेष से पागल जगत को,
प्रेम का पथ तुम दिखाओ !

दीपावली की रात्रि के, ऐ
दीपको ! घन-तम मिटाओ !

[ २० ]

जीवन का अर्थ यही क्या,
मिट्टी मे फिर मिल जाना ?
कुछ घड़ी नाच कर, मानव,
रो-रो सिसकी भर गाना ?

जन्मे थे क्या मरने को,
हँसते हो क्या रोने को ?
यह लीला कैसी, मानव,
जागे थे क्या सोने को ?

जीते हो क्या बहने को
बाढ़ों की जल-क्रीड़ा मे;
मिटने को फिर वसुधा की
भूचाल-गर्भ-पीड़ा में ?

बचपन की हँसी जरा की
झुर्री बनने को थी क्या ?
यौवन की लहरें मरघट
पर ही झरने को थीं क्या ?

आते हम पास परस्पर,
मिलकर क्या शीघ्र बिछुड़ने;
उर में क्या प्रेम पनपता,
ईर्षा-ज्वाला में घुलने ?

मरने ही में जीवन है,
रोने ही में हँसना है !
मत सोच करो तुम, मानव !
नाहक भ्रम में फँसना है !

## [ २१ ]

अतुल प्रेम चखने को तेरा
प्रभु ! आशिक मैं इस जीवन पर !

नेह भरी माता की थपकी,
जो बच्चे को तुरत सुलाती ;
मन्द, मन्द बहती मलयानिल,
जो पौधों को नित्य डुलाती !

सुख, दुख के भीषण झोंकों ने
मिल कर सारी सृष्टि उजाड़ी;
हैं तेरी ही सबल प्रीति के
नित्य निराले खेल, खिलाड़ी !

तू पागल है खलक प्रेम में,
मैं पागल तव पागलपन पर !
अतुल प्रेम चखने को तेरा
हूँ प्रभु ! आशिक इस जीवन पर !

[ २२ ]

क्यों गाऊँ ईश्वर की महिमा ?

मानव जीवन में अथाह दुख
जिसने भरा न जाने क्यों कर,
गा गा कर उस ही का गौरव,
समय बिताऊँ क्यों मेरी माँ ?

दुख है पिछले कर्मों का फल ?
जो परमेश्वर स्मृति लेकर,
व्यथित करे निर्बल जीवों को,
अपना जीवन क्यों न बिताऊँ,
धोकर उसकी मलिन कालिमा ?

जीव-जन्तु जिसके जग के सब
दयाहीन हो प्राण अन्य के
लेते निज जीवन के हित ही,
उसी विधाता की कर पूजा
अपना जीवन क्यों खोऊँ माँ ?

डरना क्या दैवी प्रकोप से !
कम है क्या स्थित करुण व्यथा ?
काटूँगा निर्भय हो जीवन,
गाकर अमल प्रेम की महिमा
मनुज-प्रीति की पावन सुषमा !

मानव-जीवन मे अथाह दुख
जिसने भरा न जाने क्यों कर,
गा गा कर, उस ही का गौरव
समय बिताऊँ क्यों मेरी माँ ?

[ २३ ]

प्रेम-मय मानव-दृगों बिन
प्रकृति भी सूनी बनेगी !

गिरि-शिखर से बादलों का
सुखालिंगन कौन देखे ?
नव द्रुमों पर नित अनिल का
प्रेम-चुम्बन कौन देखे ?

कौन रंजित, ललित सुमनों
पर भ्रमर-सुविलास देखे !
झर झराती लोल लहरों
में प्रणय-उल्लास देखे !

•

कौन चाहे देखना फिर
सरित-सागर चिर मिलन को,
बादलों के बीच छिपते
चंद्र के कोमल-वदन को !

हो अगर प्रेमल हृदय तो
प्रेम से दुनिया सनेगी !
प्रेम-मयं मानव-दृगों बिन
प्रकृति भी सूनी बनेगी !

## [ २४ ]

बिखर, बिखर, तू सागर लहरी
इस पथरीले तट पर!

संध्या की अवसान-शान्ति में,
अम्बर की तम-युक्त कान्ति में,

बिखर, बिखर, तू सागर लहरी
इस पथरीले तट पर!

मेरी तो आशाएँ अगिनित
टूट चुकी इस जीवन-तट पर;
तू भी सागर क्रीडा कर ले
गिरने दे हिलोर निज जी भर,

बिखर, बिखर, तू सागर लहरी
इस पथरीले तट पर!

गर्व न कर कोटिक लहरों पर !
रक्त-धार में, नस नस में भी,
है असंख्य लहरों का गुंजन—
इस छोटे से मानस पट पर

बिखर, बिखर, तू सागर लहरी
इस पथरीले तट पर !

[ २५ ]

प्रातकाल से बैठा हूँ मैं
इस सरिता के कूल,
आये नही किन्तु तुम अबतक
नाथ, गये क्या भूल ?

अम्बर होता मेघाच्छादित,
शीत अनिल भी बहता,
चपला केलि भयंकर करती,
आघातें नभ सहता ?

नाथ ! विलम्ब हुआ बहुतेरा
अन्धकार अब छाया,
किन्तु तुम्हारे मृदु चरणों का
शब्द नही सुन पाया !

## [ २६ ]

प्रेम बिना जीवन ही सूना !
सुमति प्रेम के साथ अगर हो,
जीवन का सुख दूना !

प्रेम खिलाता कलियों को प्रिय,
प्रेम जगाता सुरभि सुमन में,
प्रेम मिलाता सरिता-सागर,
प्रेम नचाता चाँद गगन में !

धूल-लसित बीजों को अंकुर
में परिणत कर प्रेम उठाता !
नित नव [illegible] लगा कर
फूल फलों से उन्हें सजाता !

यही प्रेम गभीर खिजाँ में
हरे हरे पत्ते झुलसाता,
पल्लव, पुष्पों की पँखड़ी को
मिट्टी में हँस हँस बिखराता !

जीवन प्रेम, प्रेम जीवन है,
सुख दुख दोनों उसके अंग !
इसी प्रेम का नाच विश्व है
आओ प्रिय, नाचे हम संग !

## [ २७ ]

जाओ ! साथिन, जाओ ! जाओ !

वहने दो आँसू की धारा,
रहने दो उर भरा हमारा !
किन्तु नही दुख मन में लाओ,
जाओ, साथिनि, जाओ ! जाओ !

जाने के पहले, प्रिय, नाचें,
जीवन भी है नृत्य पुनीत ;
चलते चलते, प्रेयसि, गावे,
जीवन है मधुमय संगीत !

सुध कर लेना कभी कभी तुम
मेरी भी जब गाओ गान !
मनुज-प्रेम का गौरव गुनना,
उमड़ी हो जब उर में तान !

क्षितिज पार हो गया सूर्य, प्रिय ,
सभी ओर छाई है शान्ति.;
सुस्थिर चित से तुम भी जाओ
व्यर्थ न लाओ मन में भ्रान्ति।

सस्मित हो चलते चलते, प्रिय
जीवन का नित गाना गाओ
जाओ, साथिनि ! जाओ, जाओ !

## [ २८ ]

जीवन मरघट है या उपवन ?

आहों से छाती नित जलती ,
नई जवानी जाती ढलती ;
तकलीफों से तड़प तड़प कर ,
दुनिया मौत ओर ही चलती !

फिर भी जीवन उपवन कहना ,
है कोरा भोलापन, बचपन !
जीवन मरघट है या उपवन ?

यदि उपवन कहना ही है तो
जीवन है उपवन शूलों का ,
खिलते जो जन निश्वासों से ,
मुरझाते सुख-उल्लासों से ;

जहाँ ढलकते रहते दुख के
आँसू, बन बन कलियाँ, प्रतिक्षण !
जीवन मरघट है या उपवन ?

## [ २९ ]

ईश्वर को कैसे मैं पाऊँ?

सुरभित जब होगा मेरा उर
मनुज-प्रीति के शुचि परिमल से,
फूलों की खुशबू जैसा ही
प्रेम बहेगा निज दृग-जल से !

मेरा प्रेम सहज ही सरसे,
मानवता को भूल न जाऊँ ;
अपने दिल ही में ईश्वर को
पाकर फूला नहीं समाऊँ।

उछल उछल कर नाचूँ, गाऊँ,
ईश्वर को जब मैं पा जाऊँ !

## [ ३० ]

विमल प्रेम ही मेरी आशा !

प्रिये ! शक्ति दो अतुल प्रेम की,
बुझे न प्रेम-पिपासा !

विद्या, ज्ञान, भक्ति ईश्वर की ,
सब अपूर्ण बिन मानवता के ;
मानव-प्रेम हीन गुरुजन भी ,
है समान निर्जल सरिता के !

जीना क्या दुनिया मे, साथिन ,
अगर न सीचा जीवन-उपवन
अमित प्रेम-परिपूर्ण हृदय से ,
जिसके बिन मृत्यु सदृश जीवन !

पाकर निर्मल प्रेम तुम्हारा ,
तृप्त हुई जीवन-जिज्ञासा ;
प्रिये ! शक्ति दो अतुल प्रीति की
बुझे न प्रेम-पिपासा !

विमल प्रेम ही मेरी आशा !

# [ ३१ ]

ताज-महल ! तू मनुज-प्रेम की
सुन्दर, सुरभित, सुखद कली !
खिलकर, परिमल विश्व प्रसारो,
करो पराजित काल बली !

वह समीप कालिन्दी गाती
मन्द, मन्द प्रियतम के गीत,
सींच प्रेम-जल से वह तुझको,
नित रटती जीवन-संगीत,

शाहजहाँ के प्रेम-अश्रु के
निर्मल, कान्ति-भरे मोती !
वहा नित्य आँसू की यमुना,
प्रकृति सदा तुझपर रोती !

रह सचेत पर ताजमहल ! तू,
धोखा दे यह सरित कहीं !
बन भुजंगिनी निठुर काल की,
निगल जाय वह तुझे कहीं !

तू मानव-जीवन की आशा,
प्रेम-मूर्ति उर-मंदिर की !
तुझे नष्ट कर काल सकेगा
क्या जी इस जग में फिर भी ?

[ ३२ ]

दुख-आगर मे,
असह व्यथा के सागर मे,
पड़ा रहूँ कब तक मेरी माँ ?

जन्म दिया जब तुमने,
हर्ष मनाया सब ने ;
जाना नहीं किसी ने लेकिन
मेरे दुख का भार,
जीवन के कंटक-मय बन की
व्यथा, अथाह, अपार !

दुख-आगर में,
असह व्यथा के सागर में,
पड़ा रहूँ कब तक मेरी माँ ?

किया था ईश्वर में विश्वास,
सहीं सब आह भरी निश्वास ;

शान्ति पूर्ण सुख की आशा में
त्यागा नित मानव-संसार !
हुई किन्तु मेरी तो सारी
आशायें निष्फल, निस्सार !

दुख-आगर में,
असह व्यथा के सागर मे,
पड़ा रहूँ कब तक मेरी माँ ?

दुखद व्यथा के तीखे शूल,
सुना था होंगे सुखमय फूल ;
अति बलवान विधाता माँ क्या,
भूला मेरे दुःख-दहन को ?
माँ ! आओ शीतल कर दो इस
आतप-मय मेरे जीवन को,

दुख-आगर मे,
असह व्यथा के सागर मे,
पड़ा रहूँ कब तक मेरी माँ !

## [ ३३ ]

जागो ! प्रिय, जागो ! जागो !

मदिर तान आशा-कोकिल की
गूँज रही मानस-उपवन में,
प्रेम-लता मे खिले फूल नव ,

जागो, प्रिय ! जागो ! जागो !

प्रेम-पुष्प की सुरभित पँखड़ी
प्रेयसि मुरझा सकती है क्या ?
चिर जीवन दो उठकर उनको ,

जागो, प्रिय ! जागो, जागो !

[ ३४ ]

क्या गाते हो सागर प्यारे !

आशाओं का मादक गुंजन,
या दुःखों का आकुल क्रंदन ?
उर मे चिर आनन्द उमड़ता
या आँसू ही नित्य बहाते,
होकर पीड़ित कठिन भार से ?
है नमकीन तुम्हारा जल क्या,
दुख की अविरल अश्रु-धार से ?

इस अस्फुट गाने में, जलनिधि ,
कौन भाव है छिपे तुम्हारे ?
क्या गाते हो सागर प्यारे !

भरा हुआ है अतुल वेदना
से यह मानव-जीवन, सागर !
क्या तुम भी व्याकुल होते हो
दु:ख हमारे देख देख कर ?

यदि ऐसा हो तो अनुचित है—
दुख से दुखी न होकर प्यारे
नाच उठो, तुम पुलकित होकर,
मनुज-प्रेम का गौरव गाकर !

सुखी बनाओ मनुज-दुखारे !
क्या गाते हो सागर प्यारे ?

[ ३५ ]

कितने दिलो की आह का
कारण बनी है रेलगाड़ी !

आँसुओं का जल भरा है,
नित विरह की आग जलती,
तप्त उर औ' अश्रु-जल से
वाष्प बन, दिन रात चलती !

धातु जैसा कर कड़ा दिल,
चीखती जाती, दहाड़ी,
कितनें दिलों की आह का
कारण बनी है रेलगाड़ी !

## [ ३६ ]

सुख-दुख का नाच नचाओ, प्रिये !
जब [illegible] जीवन है,
सुख ही सुख में न भुलाओ प्रिये !

उठती है पागल हो लहरी,
बढ़ती आगे उछल उछल कर;
क्षण भर मे झर झर झरजाती,
फेनिल-अश्रु वहा, हा ! हा ! कर।

ऊषा की यौवन-लाली मे,
कलियाँ खिलती किलक किलक कर !
संध्या के अवसान तिमिर में,
आहें भरती सिसक सिसक कर !

सुखदेवी ने बिहँस बिहँस कर
गूँथी है आँसू की माला !
इसी माल को पुलक पुलक कर
मानव ने निज उर में डाला !

इसी माल ने, प्रिये, मुझे भी
हँस हँस कर रोना सिखलाया,
विकसित, सुरभित फूलों पर हिम
अश्रु-बिन्दुओं को दिखलाया !

हँस-हँस कर रोता जग सारा,
रो-रो हँसना सिखलाओ, प्रिये
सुख-दुख का नाच नचाओ प्रिये !

## [ ३७ ]

काश कि फिर बालक हो जाऊँ !
भूल जगत का सारा संकट,
बाल-लोक में ही खो जाऊँ !

वैभव-तरणी पार निकलती,
या जाती भँवरों मे ही घिर ;
भव-सागर मे कौन तैरता,
कौन डूबता, मुझको क्या फिर !

मै तो जलधि-किनारे खेलूँ,
चुन, चुन, बना सीप की माला ;
निज दुनिया का बनूँ विधाता,
बना, गिरा रेती की शाला !
जब मन आवे रोऊँ, गाऊँ,
काश कि फिर बालक हो जाऊँ !

घूमूँ माँ की उँगली पकड़े,
विमल चाँदनी में निधि-तट पर,

राग-द्वेष की लहरों के सँग,
दे दे ताली नाचूँ जी भर,

हो सुख दुख के परे, भुला दूँ
जननि-प्रेम मे अपने मन को,
बेफिक्री से नीद सुलाऊँ
मात-गोद मे अपने तन को !
जगदम्बा के दर्शन पाऊँ !
काश कि फिर बालक हो जाऊँ !

[ ३८ ]

रजनी मे प्रभात का अंकुर !

सुप्त बीज में तरु का वैभव,
लघुता मे गुरुता का दर्शन,
मुँदी हुई नव-कलिकाओं मे,
सुरभित पुष्पों का मृदु नर्तन !

गिरि की सूखी चट्टानों में
छिपी हुई जल-स्रोत सरसता !
क्रूर-जनों की भी हड्डी मे,
भरी हुई कोमल मानवता !

शाश्वत छिपा, जगत-क्षण-भंगुर,
रजनी मे प्रभात का अंकुर !

[ ३६ ]

जीवन के काँटे सुलझाओ ?
रक्त-लसित, अति दुखित पड़ा मैं
साथिन, अब तुम अपनाओ !

निकला था मैं शान्ति खोजने,
ऊषा की लाली की ओर;
चलते चलते बैठा थक कर,
कहीं नहीं था दुख का छोर !

प्रकृति-रूप की सुषमा देखी,
उडुगण-युत अंबर देखा;
सागर की ऊँची लहरों का
क्रीड़ामय कलरव देखा !

देखा ज्ञान-कुंज का गौरव,
विद्या की शुचि कली खिली;
किन्तु शान्ति की झलक कहीं भी
अब तक मुझको नहीं मिली !

हृदय बिंधा है काँटों से प्रिय,
अब तो तुम पथ दर्शाओ!
मनुज-प्रीति के सुखद मंत्र से,
शूलों को फूल बनाओ!

## [ ४० ]

प्रेम जगत की आशा, साथी,
प्रेम जगत की आशा !

इस पैसे की दुनिया में तो
ललचाते फिरते भिखमंगे,
लेकिन प्रेम-नगर में अकसर,
धनिक लोग ही मिलते नगे !

प्रेम नही है बिकता धन से
सब को सुलभ हमेशा रहता,
मानवता से सिचे दिलों मे
हर क्षण वह रहता है बहता !

अगर प्रेम भी 'महँगा' होता
यह ग़रीब फिर कैसे जीते !
धन से पागल जग में क्योंकर
मानव-प्रेम अमिय-रस पीते ?

बिना प्रीति उनका जीवन तो
बनता अविरत अतुल निराशा !
प्रेम जगत की आशा, साथी;
प्रेम जगत की आशा !

[ ४१ ]

पूर्णिमा की चाँदनी में
फैलती शोभा निराली ?

रात्रि, नीरव शान्ति में
तल्लीन हो, मधुरस बहाती !
प्रकृति निज सौंदर्य पर
हो मुग्ध अस्फुट गीत गाती !

इस जगत में दिव्य जीवन
सूर्य की किरणें जगातीं !
और वे ही चाँदनी बन,
प्रेम की वर्षा करातीं !

प्रेम जीवन, और जीवन
प्रेम है, यह सत्य मानो;
क्या करे वह व्यक्ति जिसका
प्रेम से हो हृदय खाली ?
पूर्णिमा की चाँदनी में
फैलती शोभा निराली !

## [ ४२ ]

जगती मे क्या प्रेम अमर है ?

सुख तो दुख की तेज धार मे,
लघु तिनके सा झट बह जाता !
समय चक्र में फँस कर दुख भी,
एक बार फिर पीर भुलाता !

आशाये भी टूट टूट कर,
गिर पड़ती बन दीर्घ निराशा;
मानव का परिहास कराने
बनकर फिर आती अभिलाषा !

हँसी लुप्त होती आँसू मे
बनकर दिल की आतुर पीड़ा,
अश्रु-विन्दु फिर से मोती बन,
आँखो में करते स्मित-क्रीड़ा !

साथिन ! क्या सब ही नश्वर है ?
या जगती मे प्रेम अमर है ?

[ ४३ ]

साथिन ! कहूँ हृदय की बात ?

कठिन यातना सह कर मैंने
खोजी शान्ति ईश-सुस्मृति में,
सीचा अश्रुधार से उसको
निज मानस के शुष्क-विपिन में;
वेधा किन्तु व्यथामय उर को
करुण निराशा के शूलो ने !

जीवन के मेरे काँटों को
सुलझाया तुमने निज कर से;
जादू प्रेम-मंत्र का पढ़कर
संगिन ! नित नव जीवन देकर !

क्या सूखेगा चिर विषाद से
मानव-प्रेम-विमल जलजात ?
विपदा के अवसान तिमिर में
होगा लीन प्रेम-मय प्रात ?

## [ ४४ ]

पहनूँ क्या आँसू का हार ?

एक एक कर मेरे साथी
बिछड़े सभी न जाने क्यों कर,
क्या तुम भी, साथिन, जाती हो,
मुझे छोड़ कर अब उस पार ?

हुआ क्षितिज भी अन्धकारमय,
यह अवसान शान्ति फैलाकर,
सागर की भी चंचल लहरें
हुई स्तब्ध यों बिखर बिखर कर !

धन दौलत विद्या सब त्यागी
सही यातना दुख-जीवन की;
आशा की कुछ घड़ी कटेंगी
बैठ छाँह में मधु-उपवन की !

जाती हो क्या तुम भी संगिन,
मुझे छोड़कर अब उस पार !
पहनूँ क्या आँसू का हार ?

जाओ ! जाओ ! तुम भी जाओ
विमल प्रेम का राग भूल कर ,
चिर जीवो साथिन, चिर जीवो;
सुखी रहो निर्भीक अमर !

मैं दुख ही से प्रेम करूँगा
बैठूँगा दुख के उपवन मे,
गाऊँगा दुख ही की महिमा
निशिदिन पहन अश्रु का हार !

पहनूँ क्या आँसू का हार ?

[ ४५ ]

मानव से मानव का शोषण
नहीं सहा, देखा अब जाता !

सब धन तो श्रम का ही फल है,
किन्तु श्रमिक ही अति निर्धन है;
यह कैसा है न्याय जगत का,
यह तो प्रभु ! दानव-नर्तन है !

श्रम जो था आधार धर्म का
आज बना जड़ता का कारण !
फूटा है सौभाग्य मनुज का,
हो कैसे हरि, दुःख-निवारण ?

श्रम तो अब लघुता का द्योतक,
गुरुता का गौरव विलास है !
यह तो है उपहास मनुज का,
शोषण का विध्वंस पास है ?

उठो! उठो! जग के श्रम-जीवो,
भूलो अपनी कल्पित जड़ता;
निर्भयता का कवच इष्ट है,
दुष्टों से जब पाला पड़ता।

आगे बढ़ अपने हक माँगो,
जब उछले दानव मदमाता!
मानव से मानव का शोषण,
नहीं सहा देखा अब जाता!

# [ ४६ ]

बन्धु ! आज मिल खेलें होली !

दुःख भूलकर, ऐक्य जगाकर,
द्वेष, क्रोध, मद, लोभ भगाकर,
अमल प्रेम का नाता जोड़ें,
बोल सभी से मीठी बोली,
बन्धु ! आज मिल खेलें होली !

चलो चलें खेतों के अन्दर,
जौ गेहूँ लगते अति सुन्दर,
पौधों से भी प्रीति करेंगे,
बिखरा कर उनपर यह रोली,
बन्धु ! आज मिल खेलें होली !

पशु तो हैं साथी निशिदिन के,
हम चिर ऋणी रहेंगे जिनके;
उनके पास चलो सब मिल कर
गाय खड़ी है कैसी भोली !
बन्धु ! आज मिल खेलें होली !

भारत माँ ! हम तुझे न भूले,
तेरी ही गोदी में झूलें,
चाहे कैसे कष्ट सतावे,
सदा रहे हिल मिल यह टोली,
बन्धु ! आज मिल खेलें होली !

[ ४७ ]

सोऊँ तेरी गोद में, माँ,
सोऊँ तेरी गोद मे !

सुख से सोऊँ, शान्त चित्त से
भूल जगत-दुख सारा;
खोकर अपनेपन को तुझमें,
चख लूँ प्रेम दुलारा !

हँसलूँ, खेलूँ खुले हृदय से
सोच करूँ मै किसका !
सोच करे तो वह सोचेगी
मैं बालक हूँ जिसका !

खेलूँ तेरे पास हरदम
नित आमोद प्रमोद मे;
सोऊँ तेरी गोद में, माँ
सोऊँ तेरी गोद में !

[ ४८ ]

इस नश्वर हतभाग्य जगत में,
मानव ! तुमसे कौन बड़ा ?

मरते हो जीने को मानव !
जीते हो मरने ही को तुम,
फँस कर जीवन-मरण चक्र में,
हँसते हो रोने ही को तुम !

दुख में तुम घुलते रहते हो
हस्ती अपनी खाक मिला;
कभी न सुख से सो पाओगे,
पाया है जो उसे भुला।

अन्त तुम्हारा हरदम सन्मुख
मुसकाता बेशरम खड़ा,
इस नश्वर हतभाग्य जगत में
मानव ! तुम से कौन बड़ा ?

[ ४६ ]

दो यही वरदान प्रभु, हो
सूर्य सा सद्ज्ञान मेरा !

नष्ट कर दुख का सघन तम,
प्रेम-किरणो की प्रभा से;
जन्मभर निःस्वार्थ सेवा
ही करूँ निर्भीकता से !

असत् रजनी के तिमिर को
सत्य-आलोकित करूँ मै;
कर निजी कर्तव्य पूरा
शान्ति से फिर, प्रभु, मरूँ मैं !

हो अगर निर्मल, अहिंसक,
प्रेममय, निःस्वार्थ जीवन,
सूर्य सा सुन्दर विभामय,
हो न क्यो अवसान मेरा !

दो यही वरदान, प्रभु हो,
सूर्य सा सद्ज्ञान मेरा !

[ ५० ]

साथिन ! चलो चलें हम दोनों
सेवा के शुभ पथपर !

धन, यश के हित तो सब जीते
हम भी जीलें सेवा के हित !
शान्ति, धैर्य से चलते जावें
करते पद निज पथ पर अंकित !

कॉटों पर हम चलते जावें
गाते गीत प्रेम के प्रतिदिन !
कठिन मार्ग की रात अँधेरी
पार करें स्मृति-तारे गिन गिन !

मनुज-प्रीत के अटल पुजारी,
बनकर घूमें सभी ओर हम;
मानवता का राग अलापें,
फैलावें शुचि परिमल हरदम !

सुख-दुख के समरस साथी बन
मानव-धर्म सदा ही पाले!
सत्य, प्रेम के मृदु साँचे में
हम अपने जीवन को ढालें!
कदम मिलाकर चलते जावें
दृढ़ आशा उर रख कर;
साथिन, चलो चलें हम दोनों
सेवा के शुभ पथ पर!